

नियमसार, अजीव अधिकार ।

पुद्गलोऽचेतनो जीवश्चेतनश्चेति कल्पना ।

साऽपि प्राथमिकानां स्यान्न स्यान्निष्पन्नयोगिनाम् ॥४४॥

पुद्गल की व्याख्या आयी न ? छह प्रकार के स्कन्ध और परमाणु स्वभावपर्याय । स्वभाव और विभावपर्याय इत्यादि बहुत आया । कहते हैं कि हो जगत में पुद्गल । पुद्गल... और रागादि अचेतन है और जीव, चेतन है... जानने-देखनेवाला जीव भगवान आत्मा है । राग से लेकर परमाणु आदि सब अचेतन हैं । ऐसी जो कल्पना, वह भी प्राथमिकों को ( प्रथम भूमिकावालों को ) होती है;... शुरुआत में जिन्हें भेद करना है अथवा भेद करके ध्यान करना है, उन्हें यह होता है कि रागादि पर अचेतन हैं, आत्मा चेतन है । शुरुआत में जीव को ये विचार होते हैं ।

निष्पन्न योगियों को नहीं होती... अर्थात् ? अन्तर में जहाँ रमणता उग्ररूप से प्रगट हो गयी है । स्वभावसन्मुख की, वीतरागभावपने की स्थिरता प्रगट हुई है, उसे यह कल्पना नहीं होती कि यह अचेतन राग है और चेतन मैं हूँ । वे तो ज्ञातादृष्टारूप से परिणमते हैं । ऐसा जीव का स्वभाव है कि जानना-देखना । जैसे सिद्धभगवान जानते-देखते हैं; इसी प्रकार यह भी जीव जानने-देखने के स्वभावस्वरूप है । उसमें जो स्थिररूप से बहुत जमा नहीं है, उसे यह अचेतन और चेतन, ऐसे दो भाग के विकल्प / कल्पना होती है । ज्ञान और आनन्दस्वभाव में जहाँ लीनता जमी, योग अर्थात् अन्तर की एकाग्रता की प्राप्ति हुई, ऐसे सन्तों को यह कल्पना नहीं होती । आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ?

यह सार निकाला । पुद्गल हैं, छह प्रकार के स्कन्ध हैं । स्वाभाविक कारणपरमाणु हैं, कार्यपरमाणु हैं, जघन्य-उत्कृष्ट परमाणु हैं । हों; उनके साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है ।

मात्र विचार में पहले यह आवे कि यह राग आदि कल्पना है, वह अचेतन, उसे जानने प्रकार का, और मैं एक चेतन हूँ तो मेरे चेतन में मुझे स्थिर होना चाहिए, यह वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार पहली कल्पना... योग अर्थात् स्वरूप की जमावट जहाँ अन्दर नहीं हुई, उसे ऐसी कल्पना पहले होती है।

**निष्पन्न योगियों को नहीं...** जिन्हें आत्मा और राग की भिन्नता उग्ररूप से होकर पक्का योग अर्थात् एकाग्रता हो गयी है। स्वभाव में जहाँ उग्र एकाग्रता हुई है, उन्हें यह कल्पना नहीं होती कि यह पुद्गल अचेतन है और मैं चेतन हूँ। इसका नाम स्वभावसन्मुख की लीनता, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह ४४ वें श्लोक में कहा।

**मुमुक्षु :** प्राथमिक अर्थात् मिथ्यादृष्टि ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टि है परन्तु अभी यह अचेतन है और यह चेतन है, ऐसी जहाँ विचार की धारा चलती है, तब तक उसे निष्पन्न-स्थिरता नहीं हुई। है समकिति। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** समकिति को प्राथमिक कहा जाता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, अभी विकल्प है न।

**मुमुक्षु :** प्राथमिक को अप्राप्त कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्राथमिक को प्राप्त ही है परन्तु विकल्प है, ऐसे स्थान में यह अचेतन है, मैं चेतन हूँ, ऐसा भाव आता है।

**मुमुक्षु :** .....प्राथमिक में आ गये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह प्राथमिक में नहीं। वह जम गये हैं। यह विकल्प, विकल्प के जगह है। अन्तर की दृष्टि में मुझे कुछ है नहीं, ऐसे जम गये हैं। वीतरागता जमी है। ओहो..हो.. ! जिनेन्द्र स्वरूपरूप ऐसा आत्मा, (उसमें) जम गये हैं। यहाँ तो एक बात (करते हैं कि) पहली कल्पना ऐसी होती है। स्वरूप में स्थिरता होने पर वह नहीं होती। इतनी बात सिद्ध की। समकिति और मुनि, सबकी। ४५ वाँ श्लोक।

## श्लोक-४५

( उपेन्द्रवज्रा )

अचेतने पुद्गलकायकेऽस्मिन् सचेतने वा परमात्मतत्त्वे ।  
न रोषभावो न च रागभावो भवेदियं शुद्धदशा यतीनाम् ॥४५॥

( वीरछन्द )

जड़ पुद्गल तन में न द्वेष, नहीं चेतन परमात्मा में राग ।  
ऐसी शुद्ध दशा यतियों की होती, वे रहते वीतराग ॥४५॥

**श्लोकार्थः**—( शुद्धदशावाले यतियों को ) इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता या सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता — ऐसी शुद्धदशा यतियों की होती है ॥४५॥

श्लोक-४५ पर प्रवचन

अचेतने पुद्गलकायकेऽस्मिन् सचेतने वा परमात्मतत्त्वे ।  
न रोषभावो न च रागभावो भवेदियं शुद्धदशा यतीनाम् ॥४५॥

आहा..हा..! ( शुद्धदशावाले यतियों को ) इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता.... यह नहीं... यह नहीं... ऐसा । समझ में आया ? ऐसा भाव नहीं होता । द्वेष नहीं । वे तो ज्ञातादृष्टा हैं । आहा..हा..! शुद्धदशा सच्चे सन्त को, सच्चे मुनि को इस अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता.... अर्थात् कि यह मैं नहीं, ऐसा भी जिन्हें द्वेष नहीं होता । सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता.... परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकर सचेतन है । उनमें भी रागभाव नहीं होता । वीतरागभाव में स्थित हो गये हैं, ऐसा कहते हैं ।

ऐसी शुद्धदशा यतियों की होती है । देखो ! यह यति । यह यति कहलाते होंगे वे ? यह तो यति कहा है । जिसे आनन्दस्वरूप ज्ञानभाव अनुभव में आया है और उसमें-यत्न में, उसके यत्न में वर्तता है । जिसे एकदम आत्मस्वभाव, समभाव प्रगट हुआ है, ऐसा उसे

परमात्मा के प्रति राग नहीं, तीन लोक के नाथ तीर्थकर के प्रति राग नहीं और पुद्गल के प्रति द्वेष नहीं। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ?

अचेतन पुद्गलकाय में द्वेषभाव नहीं होता या सचेतन परमात्मतत्त्व में रागभाव नहीं होता... ये मेरे परमेश्वर हैं—परमात्मा हैं, ऐसा राग नहीं होता। आहा..हा.. ! पहले हो, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। यह तो न हो, वहाँ आगे अकेला समभाव वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसी शुद्धदशा यतियों की.... मुनियों की (होती है)। आत्मध्यान में मस्त हैं। आहा..हा.. ! समभाव। दुनिया पूरी डोले तो भी वहाँ विषमभाव-विकल्प नहीं उठता। आहा..हा.. ! इन्द्रों की अनुकूलता आयी हो तो भी कहते हैं कि राग नहीं। प्रतिकूलता, निन्दा की झड़ी बरसती हो तो द्वेष नहीं। वह पुद्गल है। समझ में आया ? और जिनके समीप में परमात्मा की उपस्थिति हो, राग नहीं। ऐसा आत्मा रागरहित स्वभाव में समस्थितिपने को प्राप्त है, वह यतियों की दशा है।

नीचे भले राग हो, परन्तु दृष्टि में वह आदरणीय नहीं होता। यहाँ तो वह राग ही नहीं है अब, ऐसा कहते हैं। अस्थिरता ही जहाँ गयी है। नीचे गुणस्थान में परमात्मा के प्रति विकल्प और यह नहीं, यह नहीं हो - ऐसा द्वेष का अंश भी आता है। उस अस्थिरता के द्वेष और अस्थिरता के भाव जहाँ छूट गये हैं, वहाँ आगे तो समभाव... समभाव... वीतरागी बिम्ब होकर पड़े हैं, कहते हैं। आहा..हा.. ! निन्दा की झड़ी में द्वेष नहीं और साक्षात् परमात्मा हों तो उन्हें सुनने का भी विकल्प और राग नहीं। समझ में आया ? ऐसी आत्मा के प्रति समस्थिति है। उसका स्वरूप ही समभावी है। ऐसी दशा में समभाव प्रगट हुआ, उसे दोनों में समतौल-ज्ञातादृष्टा है। पुद्गल हो या परमात्मा हो, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ऐसे पुरुष दिखते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहा..हा.. ! साधु की दशा... समझ में आया ?

ऐसी शुद्धदशावाले यतियों की होती है। अभी तो सम्यग्दर्शन क्या है ? श्रद्धा में भी उस परमात्मा का राग और अचेतन के प्रति द्वेष करनेयोग्य नहीं है, ऐसा श्रद्धा में हो जाता है। अस्थिरता होती है। इन समभावी सन्तों को वह अस्थिरता भी नहीं होती, ऐसी बात है। समझ में आया ? अब ३०वीं गाथा। पुद्गल की व्याख्या की। अब धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। छह द्रव्य की व्याख्या है न ?

## गाथा-३०

गमणनिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपोग्गलाणं च ।  
अवगहणं आयासं जीवादी-सव्व-दव्वाणं ॥३०॥

गमननिमित्तो धर्मोऽधर्मःस्थितेः जीवपुद्गलानां च ।  
अवगाहनस्याकाशं जीवादि-सर्व-द्रव्याणाम् ॥३०॥

धर्माधर्माकाशानां सङ्क्षेपोक्तिरियम् । अयं धर्मास्तिकायः स्वयं गतिक्रियारहितः दीर्घिकोदकवत् । स्वभावगतिक्रियापरिणतस्यायोगिनः पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणमात्रस्थितस्य भगवतः सिद्धनामधेययोग्यस्य षट्कापक्रमविमुक्तस्य मुक्तिवामलोचनालोचनगोचरस्य त्रिलोकशिखरि-शेखरस्य अपहस्तितसमस्तक्लेशावासपञ्चविधसन्सारस्य पञ्चमगतिप्रान्तस्य स्वभावगतिक्रियाहेतुः धर्मः, अपि च षट्कापक्रमयुक्तानां सन्सारिणां विभावगतिक्रियाहेतुश्च । यथोदकं पाठीनानां गमनकारणं तथा तेषां जीवपुद्गलानां गमनकारणं स धर्मः । सोऽयममूर्तः अष्टस्पर्शविनिर्मुक्तः वर्णरसपञ्चकगन्धद्वितयविनिर्मुक्तश्च अगुरुकलधुत्वादिगुणाधारः लोकमात्राकारः अखण्डैकपदार्थः । सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाश्चेति वचनादस्य गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य शुद्धगुणाः शुद्धपर्याया भवन्ति । अधर्मद्रव्यस्य स्थितिहेतुर्विशेषगुणः । अस्यैव तस्य धर्मास्तिकायस्य गुणपर्यायाः सर्वे भवन्ति । आकाशस्यावकाशदानलक्षणमेव विशेषगुणः । इतरे धर्माधर्मयोर्गुणाः स्वस्यापि सदृशा इत्यर्थः । लोकाकाशधर्माधर्माणां समानप्रमाणत्वे सति न ह्यलोकाकाशस्य ह्रस्वत्वमिति ।

जो जीव-पुद्गल, गमन-स्थिति में हेतु धर्म अधर्म है ।

आकाश जो सब द्रव्य का, अवकाश हेतुक द्रव्य है ॥३०॥

गाथार्थः—[ धर्मः ] धर्म, [ जीवपुद्गलानां ] जीवपुद्गलों को [ गमननिमित्तः ] गमन का निमित्त है [ च ] और [ अधर्मः ] अधर्म, [ स्थितेः ] ( उन्हें ) स्थिति का निमित्त है; [ आकाशं ] आकाश, [ जीवादिसर्वद्रव्याणाम् ] जीवादि सर्व द्रव्यों को [ अवगाहनस्य ] अवगाहन का निमित्त है ।

टीका :—यह, धर्म-अधर्म-आकाश का संक्षिप्त कथन है ।

यह धर्मास्तिकाय, बावड़ी के पानी की भाँति, स्वयं गतिक्रियारहित है। मात्र ( अ, इ, उ, ऋ, लृ - ऐसे ) पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है, जो 'सिद्ध' नाम के योग्य हैं, जो छह अपक्रम<sup>१</sup> से विमुक्त हैं, जो मुक्तिरूपी सुलोचना के लोचन का विषय हैं ( अर्थात्, जिन्हें मुक्तिरूपी सुन्दरी, प्रेम से निहारती है ), जो त्रिलोकरूपी शिखरी<sup>२</sup> के शिखर हैं, जिन्होंने समस्त क्लेश के घररूप पंचविध संसार को ( द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव के परावर्तनरूप पाँच प्रकार के संसार को ) दूर किया है और जो पञ्चम गति की सीमा पर हैं - ऐसे अयोगी भगवान को, स्वभावगतिक्रियारूप से परिणमित होने में स्वभावगतिक्रिया\* का हेतु, धर्म है और छह अपक्रम से युक्त ऐसे संसारियों को वह ( धर्म ), विभावगतिक्रिया\* का हेतु है। जिस प्रकार पानी, मछलियों को गमन का कारण है; उसी प्रकार वह धर्म, उन जीव-पुद्गलों को गमन का कारण ( निमित्त ) है। वह धर्म, अमूर्त, आठ स्पर्शरहित तथा पाँच वर्ण, पाँच रस और दो गंध रहित, अगुरुलघुत्वादि गुणों के आधारभूत, लोकमात्र आकारवाला ( लोकप्रमाण आकारवाला ) अखण्ड एक पदार्थ है। 'सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं' — ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से, गति के हेतुभूत इस धर्मद्रव्य को शुद्धगुण और शुद्धपर्यायें होती हैं।

अधर्मद्रव्य का विशेषगुण स्थितिहेतुत्व है; इस अधर्मद्रव्य के ( शेष ) गुण-पर्यायों जैसे, उस धर्मास्तिकाय के ( शेष ) सर्व गुण-पर्याय होते हैं।

आकाश का अवकाशदानरूप लक्षण ही विशेषगुण है। धर्म और अधर्म के शेष गुण, आकाश के शेष गुणों जैसे भी हैं।

इस प्रकार ( इस गाथा का ) अर्थ है।

( यहाँ ऐसा ध्यान में रखना कि ) लोकाकाश, धर्म और अधर्म, समान प्रमाणवाले होने से कहीं अलोकाकाश को न्यूनता-छोटापन नहीं है ( अलोकाकाश तो अनन्त है )।

१. संसारी जीवों को अन्य भव में उत्पन्न होने के समय 'छह दिशाओं में गमन' होता है, उसे 'छह अपक्रम' कहने में आता है।

२. शिखरी=शिखरवन्त, पर्वत।

\* स्वभावगतिक्रिया तथा विभावगतिक्रिया का अर्थ, गाथा ९ के फुटनोट में देखें।

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपोगलाणं च ।

अवगहणं आयासं जीवादी-सव्व-दव्वाणं ॥३०॥

जो जीव-पुद्गल, गमन-स्थिति में हेतु धर्म अधर्म है।

आकाश जो सब द्रव्य का, अवकाश हेतुक द्रव्य है ॥३०॥

टीका :— यह, धर्म-अधर्म-आकाश का संक्षिप्त कथन है। तीन द्रव्य हैं। जगत में तीन पदार्थ हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। यह धर्मास्तिकाय, ... इनमें पहला वर्णन धर्मास्तिकाय का (करते हैं)। बावड़ी के पानी की भाँति, ... बावड़ी का पानी हिलता नहीं। नदी का पानी तो अभी हिलता है, गति करता है। वह स्थिर है। इसी प्रकार धर्मास्तिकाय अरूपी पदार्थ है। बावड़ी के पानी की भाँति, स्वयं गतिक्रियारहित है। उसमें गति है नहीं। मात्र (अ, इ, उ, ऋ, लृ - ऐसे) पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है, ... अयोगी गुणस्थान की बात करते हैं और अयोगी गुणस्थान के अन्त में सिद्ध होने की क्रिया में धर्मास्ति निमित्त है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

जो 'सिद्ध' नाम के योग्य हैं, जो छह अपक्रम से विमुक्त हैं, ... इसमें लिखा है न उसमें से। नियमसार की टीका में ही भूल है। छह काय से विमुक्त है, ऐसा लिखा है, नियमसार की टीका में। फिर अर्थ ऐसा किया, छह काय से विमुक्त है परन्तु छह अपक्रम। अपक्रम अर्थात् छह दिशाओं में जाना। संसारी जीव, देह छोटे तब छह दिशा : पूर्व, उत्तर और चार कोने में जाता है। यह सिद्ध हो और यहाँ से सिद्ध होते जाये, उसे छह दिशा नहीं होती।

जो मुक्तिरूपी सुलोचना के लोचन का विषय हैं (अर्थात्, जिन्हें मुक्तिरूपी सुन्दरी, प्रेम से निहारती है), ... अर्थात् पूर्ण दशा जिन्हें प्राप्त हो गयी है। अयोगी गुणस्थान होता है। छोटे अर्थात् यहाँ से सिद्ध हुए हैं। वे गति करके जाते हैं। ऐसी व्याख्या की है। जो त्रिलोकरूपी शिखरी के शिखर हैं, ... तीन लोकरूपी पर्वत, तीन लोकरूपी पर्वत के शिखर हैं। सिद्धभगवान ऐसे हैं। जिन्होंने समस्त क्लेश के धररूप पंचविध संसार को

( द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव के परावर्तनरूप पाँच प्रकार के संसार को ) दूर किया है... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के परावर्तन-बदलना, वह जिन्हें बन्ध हो गया है।

जो पञ्चम गति की सीमा पर हैं... पंचम गति के नजदीक हैं। ऐसे अयोगी भगवान को, स्वभावगतिक्रियारूप से परिणमित... अयोगी से निकलकर। यह अयोगी ही है न, स्वभावगतिक्रिया का हेतु, धर्म है... धर्मास्ति उन्हें गति में निमित्त है। यहाँ से ऐसे सिद्ध होते हैं।

और छह अपक्रम से युक्त ऐसे संसारियों को... वे मुक्त थे। ये युक्त हैं... विभावगतिक्रिया का हेतु है। संसारी को चार कोने, ऊपर-नीचे जाना, इस विभावगति का हेतु धर्मास्तिकाय है। जिस प्रकार पानी, मछलियों को गमन का कारण है; उसी प्रकार वह धर्म, उन जीव-पुद्गलों को गमन का कारण ( निमित्त ) है। वह धर्म, अमूर्त, आठ स्पर्शरहित तथा पाँच वर्ण, पाँच रस और दो गंध रहित, अगुरुलघुत्वादि गुणों के आधारभूत, लोकमात्र आकारवाला ( लोकप्रमाण आकारवाला ) अखण्ड एक पदार्थ है। धर्मास्ति। चौदह ब्रह्माण्ड में ( व्यापक है )। 'सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं'... साथ में रहनेवाले गुण हैं और क्रमशः होनेवाली पर्यायें हैं। वे धर्मास्तिकाय को भी होते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से, गति के हेतुभूत इस धर्मद्रव्य को शुद्धगुण और शुद्धपर्यायें होती हैं। धर्मास्तिकाय में भी अनन्त शुद्ध गुण और अनन्त शुद्धपर्यायें होती हैं।

अधर्मद्रव्य का विशेषगुण स्थितिहेतुत्व है; इस अधर्मद्रव्य के ( शेष ) गुण-पर्यायों जैसे, उस धर्मास्तिकाय के ( शेष ) सर्व गुण-पर्याय होते हैं। लो! धर्मास्ति जैसे अधर्मास्तिकाय के गुण होते हैं। आकाश का अवकाशदानरूप लक्षण ही विशेषगुण है। धर्म और अधर्म के शेष गुण,.... भाषा इतनी बदली है। शेष गुण, आकाश के शेष गुणों जैसे भी हैं। नहीं तो आकाश के गुण, धर्मास्ति-अधर्मास्ति के थे, ऐसा होता है, ऐसा चाहिए, उसके बदले ऐसा लिया है। क्या कहा, समझ में आया? धर्मास्ति-अधर्मास्ति के गुण जैसे आकाश के गुण हैं, ऐसा लेना चाहिए परन्तु यह ऐसा लिया है। आकाश के जैसे गुण हैं, वैसे धर्मास्ति-अधर्मास्ति के गुण हैं।



इस प्रकार ( इस गाथा का ) अर्थ है। लो! ( यहाँ ऐसा ध्यान में रखना कि ) लोकाकाश, धर्म और अधर्म, समान प्रमाणवाले होने से कहीं अलोकाकाश को न्यूनता-छोटापन नहीं है... ये तीन ऐसे हैं, इसलिए अलोक छोटा हो गया है, ऐसा नहीं है। अलोक तो अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चारों ओर अनन्त है।

### श्लोक-४६

( अब, ३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: )

( मालिनी )

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा,  
पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम् ।  
तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्,  
प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः ॥४६॥

( वीरछन्द )

इस जग में गति में निमित्त जो और स्थिति का कारण ।  
सबको जो अवकाश प्रदान करे उनका कर अवलोकन ॥  
धर्म अधर्म तथा नभ की अस्ति में शंका करो न लेश ।  
भव्य समूह सर्वदा निज शुद्धात्म तत्त्व में करो प्रवेश ॥४६॥

श्लोकार्थ :—यहाँ ऐसा आशय है कि जो ( द्रव्य ), गमन का निमित्त है, जो ( द्रव्य ) स्थिति का कारण है और दूसरा जो ( द्रव्य ) सर्व को स्थान में देने में प्रवीण है, उन सबको सम्यक् द्रव्यरूप से अवलोक कर ( यथार्थतः स्वतंत्र द्रव्यरूप से समझकर ), भव्यसमूह सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो ॥४६॥

## श्लोक-४६ पर प्रवचन

मुनिराज श्लोक कहते हैं। ४६ ( वाँ श्लोक )

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा,  
पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम् ।  
तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्,  
प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः ॥४६॥

जो धर्मास्ति गमन का निमित्त है; अधर्मास्ति स्थिति का निमित्त है। यहाँ कारण कहा। एक को निमित्त कहा, दूसरे को कारण कहा। वस्तु तो वह की वह है। समझ में आया? निमित्त कहो, कारण कहो। कारण को निमित्त भी कहा जाता है और निमित्त को कारण भी कहा जाता है। इस व्यवहारकारण से... और दूसरा जो ( द्रव्य ) सर्व को स्थान में देने में प्रवीण है,... ठीक। प्रवीण है। आकाश प्रवीण है अर्थात् सब द्रव्य उसमें आ गये। उन सबको सम्यक् द्रव्यरूप से अवलोक कर... वे सब स्वतन्त्र पदार्थ हैं, ऐसा जानकर – ऐसा कहते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश जगत के स्वतन्त्र पदार्थ हैं। अनादि अनन्त ( पदार्थ हैं, ऐसा ) भगवान ने देखा है। ( यथार्थतः स्वतंत्र द्रव्यरूप से समझकर ),... सम्यक् द्रव्यरूप से कहा है न? सम्यक् रूप से देखना अर्थात् स्वतन्त्र सभी द्रव्य हैं। किसी को किसी के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, स्वतन्त्र है, किसी के कारण कोई द्रव्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। भव्यसमूह सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो। हे भव्य! सर्वदा भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है।

मुमुक्षु : समस्त जीवों को ऐसा उपदेश देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें भव्यसमूह कहा न! भव्यसमूह योग्य है। सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो। यह करने योग्य है।

मुमुक्षु : अभव्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभव्य की यहाँ कहाँ बात है? यह तो भव्यसमूह को कहना है ऐसा। दूसरा कुछ कहना या नहीं? प्रथमानुयोग का, अमुक या कषाय मन्द करने का?

**मुमुक्षु :** भव्य जीवों को अकेलों को ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पूरा समूह कहा। कल समूह आया था। नहीं ? आया था या नहीं इसमें ? कहीं आया अवश्य था। भव्यसमूह। देखो, इसमें भी आया। **परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये। है ? ४१ वाँ कलश, ५९ पृष्ठ, नीचे। परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह,...** वहाँ यह भव्यसमूह (आया है)। **शुद्ध आत्मा को एक को भाये। आहा..हा.. !**

**मुमुक्षु :** .....व्यवहार को तो स्थापित करो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही वस्तु करनी है। करना क्या सब ? सब समझ-समझकर समझाकर तो यह चीज़ है इसकी। भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप में प्रवेश करो। राग और उसका (पर का) आलम्बन छोड़ो। इसके लिये यह सब उपदेश है। यहाँ आया, देखो।

**भव्यसमूह सर्वदा...** वापस सर्वदा, भाषा ऐसी है। बहुत जीवों का समूह और सर्वदा। पहले ऐसा, फिर ऐसा (यह नहीं)। **सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो। है न ? आहा..हा.. !** अरे ऐसा पहले-बाद का प्रश्न कहाँ है ? इस वस्तु के स्वभाव को व्यवहार होवे तो, ऐसा होवे तो, ऐसा कुछ वस्तु के स्वभाव में नहीं है। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव ध्रुव में गहरे-गहरे प्रवेश करे, अन्दर जाये ऐसा कहा। वहाँ दृष्टि लगा और वहाँ आगे प्रवेश करो। आहा..हा.. !

**मुमुक्षु :** शास्त्र में आता है कि श्रोता को देखकर उपदेश देते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह आता है, आता है। व्यवहार का कथन है। यह देखकर क्या आया। आवे, अन्दर विकल्प ऐसा होवे तो आवे। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। मुख्य वह अध्यात्म का उपदेश है। सभा में करना। नहीं आया ? टोडरमलजी (कहते हैं) मोक्षमार्ग वहाँ है ? अन्यत्र यह मोक्षमार्ग नहीं है। जानने की बातें हैं। लो, यह ३०वीं गाथा हुई। ३१वीं, अब काल की व्याख्या है, हों !

## गाथा-३१

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं ।  
 तीदो संखेज्जावलि-हद-संठाणप्पमाणं तु ॥३१॥  
 समयावलिभेदेन तु द्विविकल्पोऽथवा भवति त्रिविकल्पः ।  
 अतीतः सङ्ख्यातावलि-हत-सन्स्थान-प्रमाणस्तु ॥३१॥

व्यवहारकालस्वरूपविविधविकल्पकथनमिदम् । एकस्मिन्नभःप्रदेशे यः परमाणुस्तिष्ठति तमन्यः परमाणुर्मन्दचलनाल्लङ्घयति स समयो व्यवहारकालः । तादृशैरसङ्ख्यातसमयैः निमेषः अथवा नयनपुटघटनायत्तो निमेषः । निमेषाष्टकैः काष्ठा । षोडशभिः काष्ठाभिः कला । द्वात्रिंशत्कलाभिर्घटिका । षष्टिनालिकमहोरात्रम् । त्रिंशदहोरात्रैर्मासः । द्वाभ्यां मासाभ्यां ऋतुः । ऋतुभिस्त्रिभिरयनम् । अयनद्वयेन सम्बत्सरः । इत्यावल्यादिव्यवहारकालक्रमः । इत्थं समयावलिभेदेन द्विधा भवति, अतीतानागतवर्तमानभेदात् त्रिधा वा ।

अतीतकालप्रपञ्चोऽयमुच्यते ह्य अतीतसिद्धानां सिद्धपर्यायप्रादुर्भावसमयात् पुरागतो ह्यावल्यादिव्यवहारकालः स कालस्यैषां सन्सारावस्थायां यानि सन्स्थानानि गतानि तैः सदृशत्वादनन्तः । अनागतकालोऽप्यनागतसिद्धानामनागतशरीराणि यानि तैः सदृश इत्यामुक्तेः मुक्तेः सकाशादित्यर्थः ।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्य

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।  
 मासोदु-अयण-संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो ॥

तथाहि ह्य

आवलि, समय दो भेद या भूतादि त्रयविध जानिये ।  
 संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत प्रमानिये ॥३१॥

गाथार्थः—[ समयावलिभेदेन तु ] समय और आवलि के भेद से [ द्विविकल्पः ]

व्यवहारकाल के दो भेद हैं [ अथवा ] अथवा [ त्रिविकल्पः भवति ] ( भूत, वर्तमान, और भविष्य के भेद से ) तीन भेद हैं। [ अतीतः ] अतीत काल [ संख्यातावलिहत-संस्थानप्रमाणः तु ] ( अतीत ), संस्थानों के और संख्यात आवलि के गुणाकार जितना है।

**टीका** :—यह, व्यवहारकाल के स्वरूप का और उसके विविध भेदों का कथन है।

एक आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित हो, उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से लाँघे उतना काल, वह समयरूप व्यवहारकाल है। ऐसे असंख्य समयों का निमिष होता है अथवा आँख मिचे, उतना काल वह निमिष है। आठ निमिष की काष्ठा होती है। सोलह काष्ठा की कला; बत्तीस कला की घड़ी; साठ घड़ी का अहोरात्र; तीस अहोरात्र का मास; दो मास की ऋतु; तीन ऋतु का अयन, और दो अयन का वर्ष होता है। ऐसा आवलि आदि व्यवहारकाल का क्रम है। इस प्रकार व्यवहारकाल, समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का है अथवा अतीत, अनागत, और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।

यह ( निम्नोक्तानुसार ), अतीत काल का विस्तार कहा जाता है : अतीत, सिद्धों को सिद्धपर्याय के प्रादुर्भाव<sup>१</sup> समय से पूर्व बीता हुआ जो आवलि आदि व्यवहारकाल वह, उन्हें संसारदशा में जितने संस्थान बीत गये, उनके जितना<sup>२</sup> होने से अनन्त है। ( अनागत सिद्धों को मुक्ति होने तक का ) अनागत काल भी-अनागत सिद्धों के जो मुक्तिपर्यन्त अनागत शरीर, उनके बराबर है।

ऐसा ( इस गाथा का ) अर्थ है।

इसी प्रकार ( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत ) श्री पञ्चास्तिकायसमय में ( २५वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि -

‘( गाथार्थ :- ) समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष — इस प्रकार पराश्रितकाल ( जिसमें पर की अपेक्षा आती है — ऐसा व्यवहारकाल ) है।’

१. प्रादुर्भाव=प्रगट होना वह, उत्पन्न होना वह।

२. सिद्धभगवान को अनन्त शरीर बीत गये हैं, उन शरीरों की अपेक्षा संख्यातगुनी आवलियाँ बीत गयी हैं; इसलिए अतीत शरीर भी अनन्त हैं और अतीत काल भी अनन्त है। अतीत शरीरों की अपेक्षा, अतीत आवलियाँ संख्यातगुनी होने पर भी दोनों अनन्त होने से दोनों को अनन्तपने की अपेक्षा से समान कहा है।

## गाथा-३१ पर प्रवचन

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं ।  
तीदो संखेज्जावलि-हद-संठाणप्पमाणं तु ॥३१॥

यह गोम्मटसार की गाथा है ५७७, जीवकाण्ड की ५७७ गाथा है। इसमें जरा गिनती में अन्तर होगा। उसमें कुछ नहीं। अरे! प्रयोजनभूत है, उसके सन्मुख देख न! वे रतनचन्दजी इसमें दोष निकालते हैं।

आवलि, समय दो भेद या भूतादि त्रयविध जानिये ।  
संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत प्रमानिये ॥३१॥

यह, व्यवहारकाल के स्वरूप का और उसके विविध भेदों का कथन है। एक आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित हो, ... इस आकाशप्रदेश में। उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से लाँघे... आकाशप्रदेश में जो परमाणु स्थित है, उसे दूसरा परमाणु मन्दगति से उल्लंघे, ऐसी भाषा है। नहीं तो एक प्रदेश में परमाणु है, वह दूसरे प्रदेश में जाये। परमाणु, परमाणु को उल्लंघे। एक परमाणु एक प्रदेश में है और दूसरा परमाणु एक प्रदेश को उल्लंघकर दूसरे में जाये। उतना काल, वह समयरूप व्यवहारकाल है। उसे एक समय अर्थात् व्यवहार छोटा काल कहा जाता है।

ऐसे असंख्य समयों का निमिष... यह सब इसका माप है। अथवा आँख मिचे, उतना काल वह निमिष है। आठ निमिष की काष्ठा होती है। सोलह काष्ठा की कला; बत्तीस कला की घड़ी; साठ घड़ी का अहोरात्र; तीस अहोरात्र का मास; दो मास की ऋतु; तीन ऋतु का अयन, और दो अयन का वर्ष होता है। ऐसा आवलि आदि व्यवहारकाल का क्रम है। भेद हुआ न, सब व्यवहार। इस प्रकार व्यवहारकाल, समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का है... एक समय का, एक समय और आवली आदि सब प्रकार। अथवा अतीत, अनागत, और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है। पाठ में है। समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं

यह ( निम्नोक्तानुसार ), अतीत काल का विस्तार कहा जाता है : अतीत, सिद्धों

को सिद्धपर्याय के प्रादुर्भाव समय से पूर्व बीता हुआ जो आवलि आदि व्यवहारकाल वह, उन्हें संसारदशा में जितने संस्थान बीत गये, उनके जितना होने से अनन्त है।

मुमुक्षु : .... नहीं देखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त ही है। दो (अंक) है नीचे (फुटनोट में) देखो।

सिद्धभगवान को अनन्त शरीर बीत गये हैं, उन शरीरों की अपेक्षा संख्यातगुनी आवलियाँ बीत गयी हैं; इसलिए अतीत शरीर भी अनन्त हैं और अतीत काल भी अनन्त है। अतीत शरीरों की अपेक्षा, अतीत आवलियाँ संख्यातगुनी होने पर भी दोनों अनन्त होने से दोनों को अनन्तपने की अपेक्षा से समान कहा है। इस अपेक्षा से समान कहा है। इसमें विवाद निकालते हैं। भाई! विवाद नहीं। आहा..हा..! मुनियों का वाक्य भी उन्हें ठीक नहीं पड़ता, क्योंकि निश्चय की व्याख्या ऐसी आवे। निरपेक्ष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है। उसे व्यवहार की आवश्यकता नहीं है। हाय.. हाय..! इसलिए ऐसी भूल निकालकर वह नहीं, जाओ! आहा..हा..!

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव से भरपूर है, उसके स्वभाव का आश्रय करने में पर की कोई अपेक्षा नहीं है। उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने में या चारित्र होने में पर की अपेक्षा बिना, स्वद्रव्य की अपेक्षा के कारण जो दृष्टि, ज्ञान प्रगटे, वह निरपेक्ष तत्त्व है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग है। उसे यह विवाद आता है। नहीं, व्यवहार हो तो होता है। व्यवहार की अपेक्षा चाहिए, यह सब विवाद के लिये ये सब बातें निकाली हैं... जीवों को कहाँ... अनादि से ऐसा किया है। आहा..हा..! अनागत काल भी-अनागत सिद्धों के जो मुक्तिपर्यन्त अनागत शरीर, उनके बराबर है। लो, फिर श्लोक कहा है।

समओ णिमिसो कट्टा कला य णाली तदो दिवारत्ती।

मासोदु-अयण-संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।

पंचास्तिकाय का है। '( गाथार्थ :- ) समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष—इस प्रकार पराश्रितकाल ( जिसमें पर की अपेक्षा आती है—ऐसा व्यवहारकाल ) है।' यह सिद्ध किया जाता है। आ गया है। अब स्वयं मुनिराज श्लोक कहते हैं।

श्लोक-४७

और ( ३१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: )

( मालिनी )

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्,  
दिवस-रजनि-भेदाज्जायते काल एषः ।  
न च भवति फलं मे तेन कालेन किञ्चिद्,  
निज-निरुपम-तत्त्वं शुद्ध-मेकं विहाय ॥४७ ॥

( वीरछन्द )

समय निमिष अरु घड़ी कला दिन रात भेद से यह उत्पन्न ।  
किन्तु एक निज निरुपम तत्त्व सिवाय न उससे कोई फल ॥४७ ॥

श्लोकार्थः—समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात आदि भेदों से यह काल ( व्यवहारकाल ), उत्पन्न होता है परन्तु शुद्ध एक निज निरुपम तत्त्व को छोड़कर, उस काल से मुझे कोई फल नहीं है ॥४७ ॥

श्लोक-४७ पर प्रवचन

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्,  
दिवस-रजनि-भेदाज्जायते काल एषः ।  
न च भवति फलं मे तेन कालेन किञ्चिद्,  
निज-निरुपम-तत्त्वं शुद्ध-मेकं विहाय ॥४७ ॥

आहा..हा..! समय आदि कहे, इन भेदों से व्यवहारकाल होता है । परन्तु शुद्ध एक निज निरुपम तत्त्व को छोड़कर,.... काल से मुझे कुछ फल नहीं है । शुद्ध एक निज निरुपम अभेद चिदानन्द अनन्त स्वभावस्वरूप, निर्मल एक और निरुपम । जिसकी कोई



उपमा नहीं, ऐसा तत्त्व भगवान आत्मा, उसमें तत्त्व को छोड़कर,.... ऐसे भगवान आत्मा के अभेद रत्नत्रय का आश्रय ऐसा जो द्रव्य, उस द्रव्य को छोड़कर उस काल से मुझे कोई फल नहीं है। पर काल का ज्ञान करने में पराधीन ज्ञान होता है और विकल्प उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का आश्रय करने से निर्विकल्पी आनन्द आता है। आहा..हा..! समझ में आया ?

काल वस्तु है। यह अधिक कहेंगे देखो! ३२ वीं गाथा!

## गाथा-३२

जीवादु पोगलादो णंतगुणा चावि संपदा समया ।  
लोयायासे संति य परमट्टो सो हवे कालो ॥३२॥

जीवात् पुद्गलतोनन्तगुणाश्चापि सम्प्रति समयाः ।  
लोकाकाशे सन्ति च परमार्थः स भवेत्कालः ॥३२॥

मुख्यकालस्वरूपाख्यानमेतत् । जीवराशेः पुद्गलराशेः सकाशादनन्तगुणाः । के ते ?  
समयाः । कालाणवः लोकाकाशप्रदेशेषु पृथक् पृथक् तिष्ठन्ति, स कालः परमार्थः इति ।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे ह

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स ।  
वदिवददो सो वट्टदि पदेस-मागास-दव्वस्स ॥

अस्यापि समयशब्देन मुख्यकालाणुस्वरूपमुक्तम् ।

अन्यच्च ह

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्टिया हु एक्केक्का ।  
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंख-दव्वाणि ॥

उक्तञ्च मार्गप्रकाशे ह

( अनुष्टुप् )

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात् ।  
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते ॥

तथाहि ह

रे जीव पुद्गल से समय संख्या अनन्तगुणा कही ।  
कालाणु लोकाकाश स्थित जो काल निश्चय है वही ॥३२॥

गाथार्थः :—[ सम्प्रति ] अब, [ जीवात् ] जीव से [ पुद्गलतः च अपि ] तथा

पुद्गल से भी [ अनन्तगुणाः ] अनन्तगुणे [ समयाः ] समय हैं; [ च ] और [ लोकाकाशे संति ] जो ( कालाणु ) लोकाकाश में हैं, [ सः ] वह [ परमार्थःकालः भवेत् ] परमार्थ काल है।

टीका :—यह, मुख्यकाल के स्वरूप का कथन है।

जीवराशि से और पुद्गलराशि से अनन्तगुणे हैं। कौन ? समय। कालाणु, लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं, वह काल परमार्थ है।

उसी प्रकार ( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत ) श्री प्रवचनसार में ( १३८वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि —

‘( गाथार्थ :- ) काल तो अप्रदेशी है। प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो, तब वह वर्तता है, अर्थात् निमित्तभूतरूप से परिणमित होता है।’

इसमें ( इस प्रवचनसार की गाथा में ) भी ‘समय’ शब्द से मुख्यकालाणु का स्वरूप कहा है।

और अन्यत्र ( आचार्यदेव श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में २२वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि —

( गाथार्थ :- ) लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक कालाणु, रत्नों की राशि की भाँति वास्तव में स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यद्रव्य हैं।

और मार्गप्रकाश में भी ( श्लोक द्वारा ) कहा है कि -

‘( गाथार्थ :- ) काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा और परिणमन न हो तो, द्रव्य भी न होगा तथा पर्याय भी न होगी। इस प्रकार सर्व के अभाव का ( शून्य का ) प्रसंग आयेगा।’

जीवाद्दु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया ।

लोयायासे संति य परमद्वो सो हवे कालो ॥३२॥

देखो! कालद्रव्य को सिद्ध करते हैं, हों!

रे जीव पुद्गल से समय संख्या अनन्तगुणा कही।

कालाणु लोकाकाश स्थित जो काल निश्चय है वही ॥३२ ॥

देखो! कोई काल नहीं मानते न, श्वेताम्बर कालद्रव्य को नहीं मानते; अतः कालद्रव्य सिद्ध करते हैं। अनादि सनातन मार्ग में छह द्रव्य में कालद्रव्य है।

यह, मुख्यकाल के स्वरूप का कथन है। देखो! जीवराशि से और पुद्गलराशि से अनन्तगुने हैं। कौन? समय। समय, समय, हों! कालद्रव्य नहीं। कालाणु, लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं, वह काल परमार्थ है। समय आदि को व्यवहार काल कहा है। ये समय अनन्तगुने कहे परन्तु कालाणु जो है। लोकाकाश के प्रदेशों में पृथक्-पृथक् स्थित हैं,... असंख्य। वे मूल पदार्थ हैं। वह अरूपी काल नामक पदार्थ है।

छह द्रव्य इतने हैं, इतना न माने तो एक समय की पर्याय के सामर्थ्य की भी प्रतीति नहीं होती। ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जानने की ताकतवाली पर्याय है, अतः छह द्रव्यों में कोई भी एक द्रव्य न माने, तो उसकी पर्याय की इतनी ताकत है, ऐसी इसने नहीं मानी। समझ में आया?

प्रवचनसार में कहा है, लो!

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।

वदिवददो सो वट्टदि पदेस-मागास-दव्वस्स ॥

काल तो अप्रदेशी है। काल को प्रदेश नहीं है। दो अणु (कालाणु) इकट्ठे नहीं होते। यह परमाणु तो इकट्ठे होकर ऐसे दिखते हैं। इकट्ठे रजकण। दो कालाणु इकट्ठे नहीं होते। प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो,... प्रदेशमात्र पुद्गल परमाणु आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्द (गति से उल्लंघता हो)। यह प्रवचनसार की शैली में आया। इसमें आकाश के प्रदेश में परमाणु था, उसे परमाणु उल्लंघे, (ऐसा कहा था)। समझ में आया?

प्रदेशमात्र पुद्गलपरमाणु, आकाशद्रव्य के प्रदेश को मन्दगति से लांघता हो, तब वह वर्तता है, अर्थात् निमित्तभूतरूप से परिणामित होता है। 'समय' शब्द से मुख्यकालाणु का स्वरूप कहा है। लो, समय शब्द से मुख्य कालाणु कहा है।

और अन्यत्र ( आचार्यदेव श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में २२वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि —

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्टिया हु एक्केक्का ।  
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंख-दव्वाणि ॥

( गाथार्थ :- ) लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक कालाणु, रत्नों की राशि की भाँति वास्तव में स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यद्रव्य हैं। यह वस्तु है।

और मार्गप्रकाश में भी ( श्लोक द्वारा ) कहा है कि -

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात् ।  
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते ॥

काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा... काल को सिद्ध करना है न! निमित्त सिद्ध करना है परन्तु काल के अभाव में परिणमन उसका है, वह परिणमन नहीं होता, ऐसा है? ऐसा दृष्टान्त ले। देखो! काल न हो तो परिणमन नहीं होता। इसलिए काल के कारण परिणमन है। क्या करे?

**मुमुक्षु :** स्पष्ट बात तो करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कालद्रव्य का परिणमन चला जाता है कहीं? कोई पर्यायरहित द्रव्य होगा?

**मुमुक्षु :** निमित्त न हो तो नहीं होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो निमित्त (कहा है) परन्तु इसकी सिद्धि करनी है। प्रत्येक द्रव्य के परिणमन में यह काल नामक द्रव्य निमित्त है, बस! क्या हो? किस नय का कथन है और क्या कहते हैं? विवाद ही यह उठा है न? शास्त्र में जो लिखा है, वह सब सच्चा, जाओ। परन्तु किस नय से?

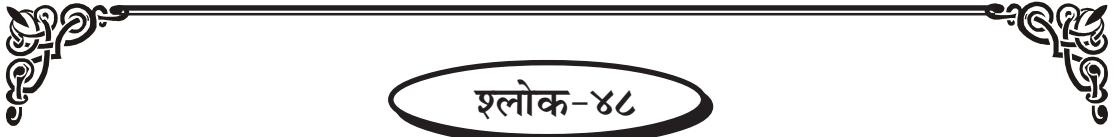
**मुमुक्षु :** ख्याल नहीं आता उन्हें।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं आता, इसलिए गड़बड़ उठती है।

काल के अभाव में, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा... लो, पदार्थों का परिणमन नहीं होगा। और परिणमन न हो तो, द्रव्य भी न होगा तथा पर्याय भी न होगी। इस प्रकार

सर्व के अभाव का ( शून्य का ) प्रसंग आयेगा। यह तो काल को सिद्ध करते हैं। काल नामक पदार्थ है। समझ में आया ? काल नामक पदार्थ जिसने उड़ाया, उसे स्वकाल का अनुभव नहीं है - ऐसा एक बार बहुत वर्ष पहले यह प्रश्न उठा था। हमारे नारणभाई के साथ जब अन्दर चर्चा चलती थी। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९८९ या १९८८। कालाणु नहीं माना, यह कालद्रव्य नहीं माना, इसलिए उसका काल बदला नहीं। स्वकाल अनुभव का हुआ ही नहीं। होवे तो उसे काल निमित्त है, ऐसा द्रव्य भी उसकी प्रतीति में आवे। समझ में आया ? इस प्रकार सर्व के अभाव का ( शून्य का ) प्रसंग आयेगा।

अब दो श्लोक स्वयं कहते हैं।



### श्लोक-४८

और ( ३२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, दो श्लोक कहते हैं ) —

( अनुष्टुप् )

वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत्।  
पञ्चानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत् ॥४८॥

( वीरछन्द )

काल द्रव्य वर्तना निमित्त हैं कुम्भकार के चक्र समान।  
काल बिना पञ्चास्तिकाय में वर्तन हो न सके यह मान ॥४८॥

**श्लोकार्थः**—कुम्हार के चक्र की भाँति ( अर्थात्, जिस प्रकार घड़ा बनने में कुम्हार का चाक निमित्त है, उसी प्रकार ), यह परमार्थकाल ( पाँच अस्तिकायों की ) वर्तना का निमित्त है। उसके बिना, पाँच अस्तिकायों को वर्तना ( परिणामन ) नहीं हो सकती ॥४८॥

## श्लोक-४८ पर प्रवचन

वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत् ।  
पञ्चानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत् ॥४८॥

कुम्हार के चक्र की भाँति ( अर्थात्, जिस प्रकार घड़ा बनने में कुम्हार का चाक निमित्त है, उसी प्रकार ), यह परमार्थकाल ( पाँच अस्तिकायों की ) वर्तना का निमित्त है। वास्तव में पाँच द्रव्यों में यह द्रव्य ऐसा है लोकाकाश प्रमाण कि सबके परिणमन में यह निमित्त है।

परमार्थकाल ( पाँच अस्तिकायों की ) वर्तना का निमित्त है। उसके बिना, पाँच अस्तिकायों को वर्तना ( परिणमन ) नहीं हो सकती। यह तो काल सिद्ध करना है न? यह सब विवाद निकालते हैं, लो। यह हो तो परिणमे; यह न हो तो न परिणमे। इसका अर्थ यह है कि यहाँ परिणमे, तब वह होता है। निश्चय से द्रव्य का परिणमन स्वकाल में स्वयं के कारण से, पर की अपेक्षा बिना परिणमता है। वहाँ एक दूसरा निमित्तरूप द्रव्य सापेक्ष व्यवहार से गिनने में आया है। उसकी अपेक्षा से व्यवहार, इसकी अपेक्षा से निश्चय है। झगड़ा... झगड़ा... शास्त्रेवाद भयं। ( परिणमन ) नहीं हो सकती।

## श्लोक-४९

( अनुष्टुप् )

प्रतीति-गोचराः सर्वे जीव-पुद्गल-राशयः ।  
धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः ॥४९॥

( वीरछन्द )

हैं सिद्धान्त पद्धति द्वारा सिद्ध जीव अरु पुद्गल राशि।  
धर्म अधर्म तथा नभ काल प्रतीतिगम्य सब द्रव्य समाज ॥४९॥

**श्लोकार्थ :**—सिद्धान्तपद्धति से ( शास्त्रपरम्परा से ) सिद्ध, ऐसे जीवराशि, पुद्गलराशि, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी प्रतीतिगोचर हैं ( अर्थात्, छहों द्रव्यों की प्रतीति हो सकती है ) ॥४९॥

श्लोक-४९ पर प्रवचन

प्रतीति-गोचराः सर्वे जीव-पुद्गल-राशयः ।

धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः ॥४९॥

सिद्धान्तपद्धति से ( शास्त्रपरम्परा से ) सिद्ध, ऐसे जीवराशि, पुद्गलराशि, धर्म, अधर्म, आकाश और काल.... देखो ! अनादि की सिद्धान्तपद्धति यह है, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? भगवान के सिद्धान्तपद्धति की परम्परा की राशि इस प्रकार है । जीवराशि अनन्त, पुद्गल अनन्त, धर्म-अधर्म, आकाश (एक) तथा काल असंख्य । प्रतीतिगोचर हैं ( अर्थात्, छहों द्रव्यों की प्रतीति हो सकती है ) । ऐसा कहते हैं । लो ! समझ में आया ? वाड़ा में झगड़ा, अलग पढ़ने में झगड़ा, इकट्ठा रहे उसमें अर्थ करने में झगड़ा । आहा..हा.. ! दूसरे प्रकार से शान्ति से देखो कि यह क्या कहना चाहते हैं ? क्या वस्तु है ? समझ में आया ?

अनादि सिद्धान्त परम्परा से सिद्ध है कि... ऐसा कहा न ? जीवराशि आदि काल ( आदि ) सब प्रतीतिगोचर है । यह काल वस्तु है । असंख्य कालाणु पदार्थ हैं । श्वेताम्बर जीव-अजीव की पर्याय को काल गिनकर, यह कालाणु द्रव्य नहीं है, ऐसा कहा । लो, यह ३२वीं गाथा हुई ।

**मुमुक्षु :** कालद्रव्य को जीव-अजीव की पर्याय में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पर्याय, वह काल है, ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं । जीव-अजीव की पर्याय है न ? काल, उसका स्वकाल, वही काल है ।

**मुमुक्षु :** कालद्रव्य भिन्न नहीं गिना

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भिन्न नहीं । धर्म, अधर्म, आकाश-काल, आकाश-पुद्गल ।



काल नहीं। प्रत्येक काल की पर्याय है न स्व की, उसे ही काल मान लेते हैं। उसका स्वकाल है सही। द्रव्य का पर्याय का स्वकाल एक समय का, उसे काल मान लिया। ऐसा है, भाई! आहा..हा..! ये वापस दिगम्बर सम्प्रदाय में भी अन्दर में झगड़े। वे कहे काल होवे तो परिणमे, न होवे तो न परिणमे। और यह झगड़ा। निमित्त कब नहीं है? तो कहे, नहीं। निमित्त आवे तो परिणमे, न आवे तो न परिणमे।

**मुमुक्षु** : उसका उत्पाद-व्यय रुक जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : उत्पाद-व्यय रुक जाये। धारावाही परिणमन है उसका। आहा..हा..!

गाथा-३३

जीवादीद्व्याणं परिवट्टणकारणं हवे कालो ।  
धम्मादिचउणहाणं सहावगुणपज्जया होंति ॥३३॥

जीवादिद्रव्याणां परिवर्तनकारणं भवेत्कालः ।  
धर्मादिचतुर्णां स्वभावगुणपर्याया भवन्ति ॥३३॥

कालादिशुद्धामूर्ताचेतनद्रव्याणां स्वस्वभावगुणपर्यायाख्यानमेतत् । इह हि मुख्यकालद्रव्यं जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां पर्यायपरिणतिहेतुत्वात् परिवर्तनलिङ्गमित्युक्तम् । अथ धर्माधर्माकाश-कालानां स्वजातीयविजातीयबन्धसम्बन्धाभावात् विभावगुणपर्याया न भवन्ति, अपि तु स्वभावगुणपर्याया भवन्तीत्यर्थः । ते गुणपर्यायाः पूर्वं प्रतिपादिताः, अत एवात्र सङ्क्षेपतः सूचिता इति ।

रे जीव पुद्गल आदि का परिणमनकारण काल है ।  
धर्मादि चार स्वभावगुण पर्यायवन्त त्रिकाल हैं ॥३३॥

गाथार्थः :—[ जीवादिद्रव्याणाम् ] जीवादि द्रव्यों को [ परिवर्तनकारणम् ] परिवर्तन का कारण ( वर्तना का निमित्त ), [ कालः भवेत् ] काल है । [ धर्मादिचतुर्णां ] धर्मादि चार द्रव्यों को [ स्वभावगुणपर्यायाः ] स्वभावगुणपर्यायें [ भवन्ति ] होते हैं ।

टीका :—यह, कालादि शुद्ध अमूर्त अचेतन द्रव्यों के निज स्वभावगुणपर्यायों का कथन है ।

मुख्यकालद्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश की ( पाँच अस्तिकायों की ) पर्यायपरिणति का हेतु होने से, उसका लिंग परिवर्तन है ( अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है ) ऐसा यहाँ कहा है ।

अब ( दूसरी बात यह है कि ), धर्म, अधर्म, आकाश और काल को स्वजातीय या विजातीय बन्ध का सम्बन्ध न होने से, उन्हें विभावगुणपर्यायें नहीं होतीं, परन्तु

स्वभाव गुणपर्यायें होती हैं — ऐसा अर्थ है। उन स्वभावगुणपर्यायों का पहले प्रतिपादन किया गया है; इसीलिए यहाँ संक्षेप से सूचन किया गया है।

---

गाथा-३३ पर प्रवचन

---

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो ।

धम्मादिचउण्हाणं सहावगुणपज्जया होंति ॥३३॥

रे जीव पुद्गल आदि का परिणमनकारण काल है।

धर्मादि चार स्वभावगुण पर्यायवन्त त्रिकाल हैं ॥३३॥

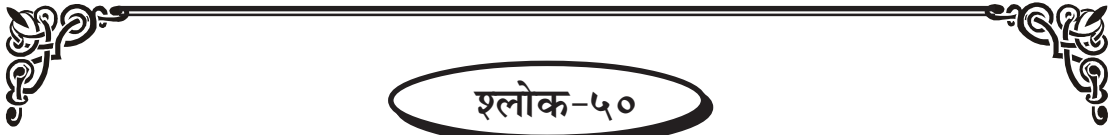
इसमें ऐसा सिद्ध किया उन लोगों ने कि भाई! धर्मास्तिकाय आगे नहीं है, इसलिए सिद्ध आगे नहीं जाते। उसके कारण यह। काल न हो तो परिणमन नहीं होता। ऐसे ही धर्मास्ति न हो तो ऊपर नहीं जाते। अरे रे!

**मुमुक्षु :** सिद्ध को परतन्त्र माना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह अनेकान्त न हो न। अनेकान्त कब कहलाये? (जब) कि कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र (कहो)। तब वे स्वतन्त्र, तब वह अनेकान्त। यहाँ तो कहते हैं सर्वथा स्वतन्त्र; परतन्त्र जरा भी नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। क्या हो? अरे रे! ३३ गाथा।

यह, कालादि शुद्ध अमूर्त अचेतन द्रव्यों के निज स्वभावगुणपर्यायों का कथन है। निज स्वभावगुण है न, उसे तो सब स्वभावगुण ही है और स्वभावपर्याय है। मुख्यकालद्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश की ( पाँच अस्तिकायों की ) पर्यायपरिणति का हेतु होने से, ... पाँचों अस्ति के पर्याय परिणति का हेतु होने से उसका लिंग परिवर्तन है ( अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है ), ऐसा यहाँ कहा है। वर्तता है, उसे निमित्त होना, उसका नाम वर्तनाहेतु। पर्यायपरिणति का हेतु - ऐसी भाषा है न? पर्यायपरिणति का हेतु, जीव को, पुद्गल को, धर्म को, अधर्म को, आकाश को, उसकी अवस्था की पर्याय परिणमे, उसका हेतु है। उसका लिंग परिवर्तन है ( अर्थात्, कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है )...

अब ( दूसरी बात यह है कि ), धर्म, अधर्म, आकाश और काल को स्वजातीय या विजातीय बन्ध का सम्बन्ध न होने से,... कहो, धर्म-अधर्म स्वजातीय में भी सम्बन्ध नहीं और पर के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं। परमाणु के साथ भी सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। उन्हें विभावगुणपर्यायें नहीं होतीं,... धर्मास्ति (अधर्मास्ति) आकाश, काल को विभावगुणपर्यायें नहीं होते। परन्तु स्वभाव गुणपर्यायें होती हैं... उन्हें तो गुण और पर्यायें सब अनादि स्वाभाविक शुद्ध होती हैं। ऐसा अर्थ है। उन स्वभावगुणपर्यायों का पहले प्रतिपादन किया गया है; इसीलिए यहाँ संक्षेप से सूचन किया गया है।



श्लोक-५०

( अब, ३३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: )

( मालिनी )

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्,  
विवरण-मति-रम्यं भव्य-कर्णामृतं यत् ।  
तदिह जिन-मुनीनां दत्त-चित्त-प्रमोदं,  
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः ॥५०॥

( वीरछन्द )

इस प्रकार भव्यों को कर्णामृतवत् है अरु अतिशय रम्य ।  
छह द्रव्यों का यह विवरण दैदीप्यमान विस्तृत मतिगम्य ॥  
जिन-मुनियों के मन को प्रमुदित करने वाला यह वर्णन ।  
भव्य जीव को है सदैव यह भव से मुक्ति का कारण ॥५०॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार भव्यों के कर्णों को अमृत, ऐसा जो छह द्रव्यों का अति रम्य दैदीप्यमान ( स्पष्ट ) विवरण विस्तार से किया गया, वह जिन मुनियों के

चित्त को प्रमोद देनेवाला षट् द्रव्यविवरण, भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो ॥५०॥

श्लोक-५० पर प्रवचन

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्,  
विवरण-मति-रम्यं भव्य-कर्णामृतं यत् ।  
तदिह जिन-मुनीनां दत्त-चित्त-प्रमोदं,  
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः ॥५०॥

इस प्रकार भव्यों के कर्णों को अमृत, ऐसा... योग्य प्राणी को इन छह द्रव्यों की प्रतीति आती है, कहते हैं। उसके कान में, भव्य जीवों को ऐसे छह द्रव्य हैं, ऐसा कान में श्रवण आता है, ऐसा कहते हैं। कर्णों को अमृत, ऐसा जो छह द्रव्यों का अति रम्य दैदीप्यमान ( स्पष्ट ) विवरण विस्तार से किया गया,... लो, समझ में आया? वह जिन मुनियों के चित्त को प्रमोद देनेवाला.... वीतरागी दृष्टिवन्त और वीतरागी चारित्रवन्त मुनियों के चित्त को प्रमोद देनेवाला है। इस प्रकार का विकल्प है न? आहा..हा..! छह द्रव्य भगवान ने कहे हैं।

षट् द्रव्यविवरण, भव्य जीवों को सर्वदा... लो, वह भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो। उनका वास्तविक ज्ञान होकर स्वभाव सन्मुख ढले, उसे भव की मुक्ति का कारण होता है। वस्तु है न! उसमें से एक भी द्रव्य कम माने तो उसके सामर्थ्य की पर्याय को ही नहीं माना। पर्याय को नहीं माना तो पर्याय की ऐसी सामर्थ्य माने, वह द्रव्य का आश्रय करे तो उसे धर्म हो। समझ में आया? गजब सूक्ष्म बातें! इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, दया पालना या यह करना, वह सब सीधा था। 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान।' लोगों को समझ में भी आवे। 'अनन्त जीव मुक्ति गये, दया के प्रमाण।'

मुमुक्षु : स्वदया या परदया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परदया की ही बात है। गढड़ा में वे, डेलो है न? उस पर

घडियाल के पास लाठीवाले ने एक पाटिया लगाया है। 'दया वह सुख की बेलड़ी,...' विवाद ही यह। शास्त्र में जहाँ-जहाँ दया आवे, वहाँ दया अर्थात् परदया; परदया अर्थात् धर्म। बस, ऐसा यह। रतनचन्दजी ऐसा सिद्ध करते हैं। यह कहते हैं कि दया के दो प्रकार हैं।

**मुमुक्षु :** परन्तु दो का क्या काम है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु आता है इसमें।

**मुमुक्षु :** परन्तु दो प्रकार किसलिए करते हो ? दया ही कहो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दया अर्थात् कोई निश्चयनय की दया और कोई व्यवहारनय की दया, ऐसे दो प्रकार हैं।

**मुमुक्षु :** वे निषेध करते हैं, दया दो किसलिए करते हो ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नय है, इसलिए करते हैं। निश्चय दया तो भगवान आत्मा राग और विकल्परहित प्रभु की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना, वही जीव की सच्ची दया है, कि जिसे संसार से मुक्त होकर मुक्ति हो, वह दया है। पर की दया का तो विकल्प है, राग है। वास्तव में तो उसमें अपनी हिंसा है। आहा..हा..! यह छह द्रव्य का स्वरूप (कहा)।

**छह द्रव्यों का स्वरूप भव्य जीवों को सर्वदा भवविमुक्ति का कारण हो।**

## गाथा-३४

एदे छद्द्रव्याणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति ।  
णिद्धिद्वा जिण-समये काया हु बहुप्पदेसत्तं ॥३४॥

एतानि षड्द्रव्याणि च कालं मुक्त्वास्तिकाया इति ।  
निर्दिष्टा जिन-समये कायाः खलु बहु-प्रदेशत्वम् ॥३४॥

अत्र कालद्रव्यमन्तरेण पूर्वोक्तद्रव्याण्येव पञ्चास्तिकाया भवन्तीत्युक्तम् । इह हि द्वितीयादिप्रदेशरहितः कालः, 'समओ अप्पदेशो' इति वचनात् । अस्य हि द्रव्यत्वमेव इतरेषां पञ्चानां कायत्वमस्त्येव । बहुप्रदेशप्रचयत्वात् कायः । काया इव कायाः । पञ्चास्तिकायाः । अस्तित्वं नाम सत्ता । सा किम्बिशिष्टा ? सप्रतिपक्षाः, अवान्तरसत्ता महासत्तेति । तत्र समस्त-वस्तुविस्तरव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतवस्तुव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता । समस्तव्यापक-रूपव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतैकरूपव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता । अनन्तपर्यायव्यापिनी महासत्ता, प्रतिनियतैकपर्यायव्यापिनी ह्यवान्तरसत्ता । अस्तीत्यस्य भावः अस्तित्वम् । अनेन अस्तित्वेन कायत्वेन सनाथाः पञ्चास्तिकायाः । कालद्रव्यस्यास्तित्वमेव, न कायत्वं, काया इव बहुप्रदेशाभावादिति ।

विन काल ये जिनधर्म वर्णित पाँच अस्तिकाय हैं ।

अरु वस्तु का वह बहु प्रदेशीपन नियम से काय है ॥३४॥

गाथार्थ :—[ कालं मुक्त्वा ] काल छोड़कर, [ एतानि षड्द्रव्याणि च ] इन छह द्रव्यों को ( अर्थात्, शेष पाँच द्रव्यों को ) [ जिणसमये ] जिनसमय में ( जिनदर्शन में ) [ अस्तिकायाः इति ] 'अस्तिकाय' [ निर्दिष्टाः ] कहे गये हैं । [ बहुप्रदेशत्वम् ] बहुप्रदेशीपना, [ खलु-कायाः ] वह कायत्व है ।

टीका :—इस गाथा में कालद्रव्य के अतिरिक्त, पूर्वोक्त द्रव्य ही पञ्चास्तिकाय हैं — ऐसा कहा ।

यहाँ ( इस विश्व में ) काल, द्वितीयादि प्रदेशरहित ( अर्थात्, एक से अधिक प्रदेशरहित ) है, क्योंकि 'समओ अप्पदेसो ( काल अप्रदेश है )' ऐसा ( शास्त्र का ) वचन है। इसे द्रव्यत्व ही है; शेष पाँच को कायत्व ( भी ) है ही।

बहुप्रदेशों के समूहवाला हो, वह 'काय' है। 'काय' काय जैसे ( शरीर जैसे, अर्थात् बहुप्रदेशोंवाले ) होते हैं। अस्तिकाय पाँच हैं।

अस्तित्व, अर्थात् सत्ता। वह कैसी है ? महासत्ता और अवान्तरसत्ता - ऐसी सप्रतिपक्ष<sup>१</sup> है। वहाँ, समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत<sup>२</sup> वस्तु में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है; समस्त व्यापकरूप में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है; अनन्त पर्यायों में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक पर्याय में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है। पदार्थ का 'अस्ति<sup>३</sup>' ऐसा भाव, वह अस्तित्व है।

इस अस्तित्व से और कायत्व से सहित, पाँच अस्तिकाय हैं। कालद्रव्य को अस्तित्व ही है; कायत्व नहीं है क्योंकि काय की भाँति उसे बहुप्रदेशों का अभाव है।

---

गाथा-३४ पर प्रवचन

---

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति ।

णिहिद्धा जिण-समये काया हु बहुप्पदेसत्तं ॥३४॥

इसमें छह द्रव्य हैं। वीतराग शास्त्र में तो ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

विन काल ये जिनधर्म वर्णित पाँच अस्तिकाय हैं।

अरु वस्तु का वह बहु प्रदेशीपन नियम से काय है ॥३४॥

इस गाथा में कालद्रव्य के अतिरिक्त, पूर्वोक्त द्रव्य ही पंचास्तिकाय हैं — ऐसा कहा। काल में अस्तिकाय नहीं न? काल अस्ति है, प्रदेशी-कायसमूह नहीं है। इसीलिए

१. सप्रतिपक्ष=प्रतिपक्षसहित, विरोधीसहित। (महासत्ता और अवान्तरसत्ता परस्पर विरोधी हैं।)

२. प्रतिनियत=नियत, निश्चित, अमुक ही।

३. अस्ति=है। (अस्तित्व=होना)



पाँच अस्तिकाय से वह भिन्न पड़ता है, ऐसा। अस्तिकाय नहीं है। भिन्न पड़ता है, इसलिए अस्ति नहीं है - ऐसा नहीं है।

( इस विश्व में ) काल, द्वितीयादि प्रदेशरहित... काल को दो प्रदेश नहीं होते। ( एक से अधिक प्रदेशरहित ) है, क्योंकि 'समओ अप्पदेशो ( काल अप्रदेश है )' ऐसा ( शास्त्र का ) वचन है। इसे द्रव्यत्व ही है;... वस्तु ही है। शेष पाँच को कायत्व ( भी ) है ही। द्रव्यपना भी है और कायपना भी है। काल को अकेला द्रव्यपना है और कायपना नहीं। कहो, समझ में आया ?

बहुप्रदेशों के समूहवाला हो, वह 'काय' है। काय की व्याख्या की है। जिसके बहुत प्रदेश हों, दो से लेकर अनंत, उसे काय कहते हैं। 'काय' काय जैसे ( शरीर जैसे, अर्थात् बहुप्रदेशोंवाले ) होते हैं। अस्तिकाय पाँच हैं। कहो, उसे काय है। बहुत प्रदेशों का समूह है न ? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और पुद्गल।

अस्तित्व, अर्थात् सत्ता। अस्तित्व, वह सत्ता। वह कैसी है ? महासत्ता और अवान्तरसत्ता - ऐसी सप्रतिपक्ष है। सप्रतिपक्ष - विरोधसहित। महासत्ता, अवान्तरसत्ता परस्पर विरोधी है। वहाँ, समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है;... भाषा देखो ! सब है, ऐसा कहनेवाली, जाननेवाली, वह महासत्ता है। एक ही सत्ता सबमें व्याप्त है, ऐसा नहीं है। ( मात्र ) है। समस्त वस्तुविस्तार में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है;... ऐसी भाषा है। सभी चीज में एक ही सत्ता व्याप्त है, ऐसा नहीं, परन्तु सब द्रव्यों में है.. है... है... है.. है... है... है... है... सत्तारूप से, इस प्रकार महासत्ता कही गयी है।

प्रतिनियत वस्तु में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;... देखो ! नियत, निश्चित अमुक ही पदार्थ। एक-एक में। एक परमाणु, एक आत्मा, एक धर्मास्ति इत्यादि। उनमें रहनेवाली, व्यापनेवाली वह अवान्तर-अन्तरभेद है। प्रवचनसार में बहुत विस्तार आता है। समस्त व्यापकरूप में व्याप्त होनेवाली, वह महासत्ता है; प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;... लो ! एक-एक ( सत्ता )। अनन्त पर्याय में व्यापनेवाली वह महासत्ता है। अर्थात् ? समस्त पर्यायें हैं, अनन्त हैं, पर्यायें अनन्त हैं। प्रतिनियत एक रूप में व्याप्त होनेवाली, वह अवान्तरसत्ता है;... पर्याय के अनन्तपने का एकरूप गिनने पर महासत्ता है। एक-एक की पर्याय भिन्न गिनने पर वह अवान्तरसत्ता है। पदार्थ का 'अस्ति' ऐसा भाव, वह अस्तित्व है। लो, अस्तित्व / होनापना।

मुमुक्षु : परमाणु भी एक प्रदेशी है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो । परमाणु की पर्याय ।

मुमुक्षु : परमाणु मिलता नहीं तो फिर वह अस्तिकाय कैसे कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलता नहीं । उसकी योग्यता है न ! होने की योग्यता है, इसलिए गिना है । काल में है ऐसी ? किसलिए ? परमाणु में बहुत परमाणु का स्कन्ध होने की योग्यता है, इसलिए उसे अस्तिकाय कहा है ।

मुमुक्षु : उपचार से कहा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार से कहा है । एक परमाणु पुद्गल है, ऐसा आया था न कल ?

मुमुक्षु : बहुप्रदेशी तो परमाणु वह उपचार से कहा है, स्कन्ध होने की योग्यता के कारण (कहा है) ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो स्कन्ध कहा न । स्कन्ध की योग्यता के कारण ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ? यह क्या कहा ? परमाणु, वह निश्चयपुद्गल है । स्कन्ध, वह व्यवहारपुद्गल है ।

इस अस्तित्व से और कायत्व से सहित, पाँच अस्तिकाय हैं । अस्तित्व और समूहरूप से प्रदेशोंवाले पाँच अस्तिकाय हैं । कालद्रव्य को अस्तित्व ही है; कायत्व नहीं है क्योंकि काय की भाँति उसे बहुप्रदेशों का अभाव है । बहुत प्रदेशों का जो काय / शरीर है, ऐसा उसमें अभाव है । इसलिए उसे अस्तिकाय कहते हैं । अस्ति कहते हैं परन्तु काय कहने में नहीं आता ।

श्लोक-५१

( अब, ३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: )

( आर्या )

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभिः प्रीत्या ।  
षट्द्रव्य-रत्न-माला कण्ठाभरणाय भव्यानाम् ॥५१॥

( वीरछन्द )

प्रीतिपूर्वक पूर्वाचार्यो ने छह द्रव्य रत्न की माल ।  
भविजन कण्ठाभरण हेतु श्रुत-रत्नाकर से लिया निकाल ॥५१॥

**श्लोकार्थ :**—इस प्रकार जिनमार्गरूपी रत्नाकर में से पूर्वाचार्यो ने प्रीतिपूर्वक षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला, भव्यों के कण्ठाभरण के हेतु बाहर निकाली है ॥५१॥

श्लोक-५१ पर प्रवचन

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभिः प्रीत्या ।  
षट्द्रव्य-रत्न-माला कण्ठाभरणाय भव्यानाम् ॥५१॥

इस प्रकार जिनमार्गरूपी रत्नाकर में से.... देखो, वीतराग-सर्वज्ञ का जिनमार्गरूपी वीतरागमार्ग रत्नाकर में से,... बड़ा समुद्र है । जैनमार्गरूपी रत्नाकर महासमुद्र है । आहा..हा.. ! पूर्वाचार्यो ने प्रीतिपूर्वक... वापिस ऐसा ( कहा ) । यह सब पूर्व आचार्य हो गये, कुन्दकुन्दादि वे । उन्होंने षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला,... ऐसा तो स्पष्ट किया है । श्रीमद् को नियमसार हाथ नहीं आया था । रत्नाकर में से पूर्वाचार्यो ने प्रीतिपूर्वक षट्द्रव्यरूपी रत्नों की माला, भव्यों के कण्ठाभरण के हेतु बाहर निकाली है । रत्नों की माला भव्यों के कण्ठ के आभरण के लिये । ज्ञानरूपी भाव इसकी शोभा है । षट्द्रव्य का ज्ञान, वह शोभा है । यथार्थ ज्ञान षट्द्रव्य का, वह ज्ञान की पर्याय की शोभा है । इसलिए वह छह द्रव्य का ज्ञान होना, वह भव्यजीव के कण्ठ का आभरण है - शोभा है । उसके लिये यह कहा है । ३५-३६ बाद में कहेंगे ।

( श्रोता : प्रवचन वचन गुरुदेव ! )